

## जैन मनोविज्ञान में कर्म का विश्लेषण

### सारांश

कर्म करना प्राणी मात्र का स्वभाव है। इस विश्व में कर्म किये बिना व्यक्ति क्षणभर के लिए भी नहीं रह सकता। कर्म-हीनता मानवमात्र के लिए एक असंभव स्थिति है। जगत् की इस विविधता और जीवन की विषमता का हेतु जैनदर्शन के अनुसार कर्म है। कर्म ही जगत् की विविधता और जीवन की विषमता का जनक है। कर्म ही वह माध्यम है, जो आत्मा की उर्जा को ग्रहण करते हैं तथा अपने स्वरूप (अच्छे या बुरे) के अनुसार उर्जा में बदलकर विभिन्न इन्द्रियों में प्रवाहित करता है। अच्छे कर्म आत्मिक उर्जा का स्वाभाविक प्रवाह बनाये रख व्यक्ति को गतिशील रखता है, इन कर्मों के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व संकलित अथवा अखण्डित बना रहता है।

**मुख्य शब्द** : कर्म, आस्त्रव, कर्म-बंध, नोकर्म, अघात्य-कर्म, अपूर्व-वासना, अनेकान्त, पुद्गल।

### प्रस्तावना

मनुष्य जीवन विविधताओं से भरा है। इन विविधताओं का प्रमुख कारण व्यक्ति की प्रकृति में विविधता का होना है। मनुष्य योनि के साथ-साथ उसे अद्भुत प्रकृति का वरदान भी मिला है। संसार में सभी कार्यों के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य है। कारण के बिना कार्य संभव ही नहीं है। ऐसे ही व्यक्ति जो कुछ है, जो कुछ था और जो कुछ होगा उसके पीछे भी कारण है-‘कर्म’। कर्म शब्द से व्यक्ति का परिचय पुराना है पर ‘कर्म’ से परिचय, कर्म की गूढ़ताओं से परिचय, कर्म की अनिवार्यता से उसका परिचय नया है। आश्चर्यपूर्ण बात तो यह है कि जिस कर्म शब्द को व्यक्ति बचपन से सुन रहा है, उसकी अनुभूति उससे बिल्कुल भी नहीं है।

जगत् अपनी विशालता लिये हमारे सामने सहज ही प्रस्तुत है। इस विशाल संसार में जब हम झॉककर देखते हैं तो व्यक्ति को अनेक विविधतायें देखने को मिलती हैं। जीवन विषमताओं से भरा है। जगत् में कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई निर्धन, कोई धनवान, कोई पण्डित, कोई मूर्ख, कोई सुन्दर, कोई कुरूप, कोई दुर्बल, कोई बलवान, कोई उन्मत्त, कोई विद्वान, कहीं जीवन, कहीं मरण आदि अनेक विविधताएँ पायी जाती हैं। चहुँ ओर वैचित्र्य ही दिखता है। यही नहीं व्यक्ति के जीवन में भी विषमताएँ हैं। हमारा जीवन भी आशा-निराशा, सुख-दुःख, प्रसन्नता-अप्रसन्नता, हर्ष-विषाद, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि अनेक परिस्थितियों से गुजर रहा है। जीवन में कहीं कोई समरूपता नहीं है। जगत् की इस विविधता का और जीवन की विषमता का कोई न कोई तो हेतु होना ही चाहिए। जैनदर्शन के अनुसार वह हेतु है- ‘कर्म’। कर्म ही जगत् की विविधता और जीवन की विषमता का जनक है।

### शोध उद्देश्य

इस शोध का उद्देश्य कर्म की प्रकृति जानते हुए इससे व्यक्ति के मन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। कर्म की प्रकृति किस प्रकार से मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है, इसका इस शोध में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाना है।

### साहित्यावलोकन

कछारा (2009) कहते हैं कि आधुनिक विज्ञान ने हमें भौतिक शरीर और भौतिक संसार की संरचना के कार्य-कलापों का सूक्ष्म विवरण दिया है। वहीं भगवान महावीर ने अपने उपदेशों में संपूर्ण जगत् के कार्य-कलापों को कर्म के सिद्धांतों से बँधा हुआ कहा है और इसी आधार पर एक सीमा के पश्चात् आधुनिक विज्ञान को अपने प्रश्नों के हल के लिये धर्म का सहारा लेना पड़ता है। कछारा (2009) का शोध कर्म सिद्धांत पर आधारित है। इसमें कर्म शरीर, और तेजस शरीर दोनों विद्युत् पद्धति के हैं। जहाँ कर्म शरीर विद्युत् चुंबकीय क्षेत्र है वहीं तेजस शरीर उर्जा से निर्मित है। इस तेजस शरीर में ही नाड़ी और चक्र



**रजत कुमार जैन**

सह- प्राध्यापक,  
शिक्षा शास्त्र विभाग,  
अपोलो महाविद्यालय,  
अंजोरा, दुर्ग, छत्तीसगढ़,



**सुमनलता सक्सेना**

सहायक प्राध्यापक,  
शिक्षा शास्त्र विभाग,  
कल्याण पी जी महाविद्यालय,  
भिलाई, छत्तीसगढ़

उपस्थित होते हैं। जब कर्म शरीर और तेजस शरीर के कार्यप्रणाली पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं। परंतु जब निष्क्रिय होते हैं तो वो भौतिक वे सक्रिय होते हैं तो वे उसके कार्यप्रणाली को प्रभावित भी करते हैं और नियंत्रित भी करते हैं। एरिक बारकर (2014) के शोध से पता चलता है कि हम हमेशा कर्म करते रहते हैं, चाहे हम इसे स्वीकार करे या न करें। हम अच्छे कर्मों को सक्रियता से करके अपने भाग्य के पक्ष को प्रोत्साहित कर सकते हैं। जब हम कुछ चाहते हैं और हम अनिश्चित हैं कि हम इसे प्राप्त करेंगे, तब भी हमें कर्म करना पड़ता है। ये भ्रम या मूर्खता नहीं है वरन वास्तविक है। क्योंकि कर्म का रूप वास्तविक ही हो सकता है। सीधे और यथार्थवादी रूप से कर्म वास्तविक और बहुत वास्तविक (वास्तविकता) है, "कारण और परिणाम" या "कारण और प्रभाव" के अपरिवर्तनीय चक्रीय कानून, के अनुसार प्रभावों के अलग-अलग स्तर होते हैं (सोनिका त्यागी 2017)। हर कोई शारीरिक या आध्यात्मिक रूप से लाभ के लिए कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र है, किसी को अपने कर्म का फल जल्द या बाद में सहन करना पड़ता है। यह कारण और प्रभाव का कानून ब्रह्मांड का एक अटूट कानून है (देव शर्मा 2017)।

### कर्म का स्वरूप

कर्म करना प्राणी मात्र का स्वभाव है। इस विश्व में कर्म किये बिना व्यक्ति क्षणभर के लिए भी नहीं रह सकता। कर्म-हीनता मानवमात्र के लिए एक असंभव स्थिति है। जब तक शरीर है, तब तक साँस लेना, उठना, बैठना इत्यादि कर्म होते ही रहते हैं। तुलसीदास ने साफ-साफ शब्दों में इसकी घोषणा की है -

"करम प्रधान विश्व करि राखा"।<sup>1</sup>

गीता में भी श्री कृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट शब्दों में कहा-

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।

कार्यते ह्यवषः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।"<sup>2</sup>

अर्थात् कोई भी व्यक्ति क्षणभर के लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। प्रकृति से उत्पन्न गुणों के कारण प्रत्येक व्यक्ति को विवश होकर कर्म करना ही पड़ता है।

जब तक हम शरीर धारण किए हुए जीवन बिताते हैं, तब तक हम कर्म से बच नहीं सकते। कर्म के बिना जीवन टिक ही नहीं सकता। पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ<sup>3</sup> भी यही मानते हैं -

"आँख चाहे या न चाहे उसे देखना ही पड़ता है;  
हम कानों को स्तब्ध होने के लिए नहीं कह सकते।

हमारे शरीर, वे चाहे जहाँ हो अनुभव करते ही हैं;  
हमारी इच्छा के प्रतिकूल अथवा हमारी इच्छा के

अनुकूल।।"<sup>4</sup>

"कर्म" का शाब्दिक अर्थ "कार्य" "प्रवृत्ति" अथवा "क्रिया" होता है, अर्थात् जो किया जाता है, उसे कर्म कहते हैं। जैसे-हँसना, रोना, चलना, दौड़ना, खाना, पीना आदि (त.वा.6/1)<sup>4</sup>। कर्म शब्द का प्रादुर्भाव "कृ" धातु से हुआ है। इस धातु का अर्थ "करना" "व्यापार" या "हलचल" से लिया जाता है (तिलक; 2006)<sup>5</sup>। व्यवहार में काम-धन्धे या व्यवसाय को "कर्म" कहा जाता है। कर्मकाण्डी मीमांसक, यज्ञ आदि क्रियाओं को कर्म कहते हैं। स्मृतियों

में चार वर्णों और चार आश्रमों के योग्य कर्तव्यों को कर्म कहा गया है। पौराणिक लोग व्रत, नियम आदि धार्मिक क्रियाओं को कर्म मानते हैं (जैन धर्मदर्शन; पृष्ठ-442)<sup>6</sup>। वैश्याकरण, जो कर्ता के लिए इष्ट हो, उसे कर्म मानते हैं (अष्टाध्यायी ;1/4/49)<sup>7</sup>।

न्यायशास्त्र में "उत्क्षेपण", "अवक्षेपण", "आकुंचन", "प्रसारण" तथा "गमन" रूप पाँच प्रकार की क्रियाओं के लिए "कर्म" शब्द का प्रयोग किया जाता है। योगदर्शन में संस्कार को "अपूर्व वासना" अथवा कर्म कहा जाता है। बौद्ध-दर्शन में कर्म, वासना रूप में है (जैनेन्द्र सिद्धांत कोष 2/28)<sup>8</sup>। जैन सिद्धांत में जो कर्म-सिद्धांत का विवेचन मिलता है वह अत्यंत विषद् तथा अर्थपूर्ण है। जैन मान्यता के अनुसार कर्म का अर्थ कायिक क्रियाकाण्डों एवं अन्य प्रवृत्तियों से नहीं है न ही बौद्धों और वैशेषिक की तरह संस्कार मात्र है, अपितु कर्म एक पृथक सत्ता, भूतपदार्थ भी है।

### कर्मसिद्धांत

कर्म सिद्धांत को केवल जैन दर्शन में ही मान्यता नहीं मिली बल्कि विभिन्न दर्शनों में भी इस सिद्धांत की गिनती होती है और सभी दर्शन किसी न किसी प्रकार से कर्म सिद्धांतों का पालन करते रहे हैं -

1. न्याय वैशेषिक जैसे भारतीय दार्शनिक तन्त्रों का विश्वास है कि कर्म सिद्धांत ईश्वर के नियंत्रण एवं निर्देश में काम करता है और ईश्वर जैसी सर्वोच्च सत्ता ने कर्म सिद्धांत के अनुसार ही इस जगत् की सृष्टि की है। ये दर्शन मानते हैं कि जगत् में 'अदृष्ट' की व्यवस्था है और प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों के अनुसार गुणों एवं दुर्गुणों का संचय होता है। शुभाशुभ मानवकर्मों का संचय ही 'अदृष्ट' कहलाता है। ईश्वर इसका नियंत्रण करता है और वैयक्तिक कर्मानुसार वह मानव जाति का वितरण करता है।
2. हिन्दु धर्म भी इसी प्रकार के कर्म सिद्धांत की धारणा को मानता है। डॉ. राधाकृष्णन के विवेचानुसार- "कर्म का सिद्धांत विधि के नियम को स्वीकार करता है न केवल बाह्य प्रकृति में, अपितु मन और नैतिक आदर्शों की दुनियाँ में भी - यह ईश्वर के मन तथा संकल्प का रूप है। ईश्वर ही उसका प्रबंधक है, कर्माध्यक्ष है। (गीता iii 40)..... हम अपने साथ सम्पूर्ण भूत को लेकर चलते हैं। यह एक ऐसा अमिट लेखा-जोखा है, जिसे काल धूमिल नहीं कर सकता, न ही मृत्यु उसे खरोच सकती है-कर्म का सिद्धांत उस सामग्री अथवा संदर्भ से सम्बन्धित है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पैदा होता है, यद्यपि वह भूत को निश्चित रूप में मानता है, किन्तु भविष्य के केवल सषर्त घटित होने को अनुमति प्रदान करता है" (राधाकृष्णन : द हिन्दु व्यू ऑफ लाइफ, 1949 पृ.72-75)<sup>9</sup>।
3. इस्लाम मनुष्य के कर्म सिद्धांत को स्वीकार नहीं करता क्योंकि जो कुछ आदमी कर्म तथा इच्छा करता है, वह सब कुछ अल्लाह की मेहरबानी है। आदमी अल्लाह के रहमो-करम पर जीता है और कर्म करता है (जाटव 2000)<sup>10</sup>।
4. ईसाई धर्म में भी स्थिति कुछ समान ही पायी जाती है। "क्रिस्टियनिटी किसी भी कठोर भावार्थ में कर्म की विधि अथवा नैतिक प्रतिकार में विश्वास नहीं करती है, ईसाई

ईश्वर का प्रकोप (क्रोध) न केवल दुराचारी के विरुद्ध होता है, अपितु उन लोगों के प्रति भी होता है जो इसका सम्मान तथा उसकी प्रशंसा करने से मना करते हैं (एन.के. देवराज : हिन्दूइज्म एण्ड क्रिस्टियनिटी, 1969 पृ.66)<sup>11</sup>।

5. जैनदर्शन यद्यपि एक निरीश्वरवादी धर्म है, किन्तु प्रतिकार के कठोर भावार्थ में वह कर्म सिद्धांत में अटूट आस्था रखता है। जैन-धर्म में कर्म अर्थात् किसी आत्मा के गत जीवन का योग – उसके गत विचार, वाक् एवं कृत्य—उसमें कुछ अंध तृष्णाएँ तथा वासनाएँ एक विशेष प्रकार के पुद्गल—कणों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं और उन्हें शरीर के रूप में संगठित कर देती है, जो अचेतन रूप में इच्छित है। “इसलिए जैनदर्शन द्वारा आत्मा की अपनी वासनाओं या कार्मिक शक्तियों सहित शरीर का संगठन करने वाला उसका कार्यक्षम कारण माना गया है, जबकि पुद्गल को उसका भौतिक कारण कहा गया है” (दत्ता/चटर्जी : एन इन्ट्रोडक्शन टू इन्डियन फिलॉसफी, 1982, पृ.101-102)<sup>12</sup>।

विभिन्न मतों को ध्यान में रखते हुए और उसकी विविधता को ध्यान में रखते हुए इन सिद्धांतों को अत्यंत सरल और सटीक रूप में इसकी व्याख्या आवश्यक है जिसे सटीक कहा जा सके। दरअसल जैनदर्शन में कर्म का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि आप अपने कर्म के प्रति स्वतंत्र हैं और वही कर्म आपके भूत, वर्तमान और भविष्य का व्याख्यान करता है। ओशो के अनुसार (1989)<sup>13</sup> —“हिन्दुस्तान में तीन बड़े धर्म पैदा हुए हैं और इनका कोई मुकाबला पृथ्वी पर कहीं भी नहीं है। बाकी धर्म इन धर्मों के मुकाबले फीकी छायाएँ हैं। हिन्दु धर्म पैदा हुआ, जैन धर्म और बौद्ध धर्म, ये तीन महान धर्म भारत में पैदा हुए। इन तीनों में हजारों फर्क हैं, विवाद हैं, सिर्फ एक बात निर्विवाद है—वह कर्म का सिद्धांत है।”

महावीर परमात्मा को नहीं मानते। हिन्दुओं का सारा आधार परमात्मा पर खड़ा है। बुद्ध न परमात्मा को मानते हैं, न आत्मा को मानते हैं। जैनों का सारा आधार आत्मा पर खड़ा है। ये बड़े कठिन और कुछ इस तरह के विरोध हैं कि इनके बीच कोई सेतु नहीं बनाया जा सकता। हिन्दु मानते हैं— आत्मा, परमात्मा, संसार। जैन मानते हैं— आत्मा और संसार और बुद्ध तीनों को नहीं मानते—न आत्मा, न परमात्मा, न संसार, केवल शून्यता। लेकिन एक बात पर तीनों राजी हैं, वह है—कर्म का सिद्धांत। निश्चित ही कर्म का सिद्धांत इतना गहरा है कि उस संबंध में विवाद नहीं हो सकता।

निश्चित ही कर्म का सिद्धांत भारत की सर्वाधिक गहरी खोज है—परमात्मा से गहरी, आत्मा से गहरी, निर्वाण से भी गहरी क्योंकि उस संबंध में बुद्ध, महावीर और कृष्ण तीनों एकमत हैं। इस संबंध में वे तीनों राजी हैं। सोचने जैसा है कि जिसमें इस तरह के तीन लोग, जो सब चीजों में विपरीत हैं, एक दूसरे से राजी होते हों तो बात कुछ ऐसी है कि सिद्धांत की नहीं होगी – सत्य की होगी, जीवन के नियम की होगी, व्याख्या की नहीं होगी।

कर्म के सिद्धांत का अर्थ है –

“कि तुम जिम्मेवार हो।

तुम जहाँ हो, अपने ही कारण हो।

तुम जो हो, अपने ही कारण हो।

तुम जैसे हो, अपने ही कारण हो।

तुम अपने ही कर्मों का संघात हो, जोड़ हो।”

(ओशो, 1989)<sup>14</sup>

इस सिद्धांत में महावीर ने व्यक्ति को ये वास्तविकता बतायी है कि कोई भी कार्य आप करें उसके पहले ये सोच लें, समझ लें कि बाद में आप किसी को जिम्मेदार नहीं ठहरा सकते। जो कुछ भी व्यक्ति बनायेगा वह उसी का होगा और वह किसी दूसरे के लिए कुछ नहीं कर सकता। व्यक्ति का किया हुआ ही उसका भूत था, वर्तमान है और भविष्य होगा। इस सिद्धांत के अनुसार जीने में व्यक्ति को एक बहुत चिन्तन की हुयी जिंदगी जीना होगा जिससे वह किसी पर पराश्रित नहीं होगा।

### जैनदर्शन में कर्म का स्वरूप

जैनदर्शन में कर्म पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड माना गया है। तदनुसार यह लोक तेईस प्रकार की पुद्गल वर्गणाओं में व्याप्त है। उनमें से कुछ परमाणु कर्म रूप में परिणत होते हैं, उन्हें ‘कर्म-वर्गणा’ कहते हैं। कुछ शरीर रूप में परिणत होते हैं, वे नोकर्म-वर्गणा कहलाते हैं, उन्हें ‘कर्म-वर्गणा’ कहते हैं। लोक इन दोनों प्रकार के परमाणुओं से पूर्ण है। जीव अपने मन, वचन, कार्य की प्रवृत्तियों से इन्हें ग्रहण करता है। मन, वचन, कार्य की प्रवृत्ति तभी होती है, जब जीव के साथ कर्म सम्बद्ध हो तथा जीव के साथ कर्म तभी संबद्ध होते हैं, जब मन, वचन तथा कार्य की प्रवृत्ति हो। इस प्रकार कर्म से प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति से कर्म की परम्परा अनादि से चली आ रही है। कर्म और प्रवृत्ति के इस कार्य-कारण सम्बन्ध को दृष्टिगत रखते हुए पुद्गल परमाणुओं के पिण्ड रूप कर्म को “द्रव्य-कर्म” तथा रागद्वेषादि रूप प्रवृत्तियों को “भाव-कर्म” कहा गया है (गोम्टरसार कर्मकाण्ड-6)<sup>15</sup>। द्रव्य कर्म और भावकर्म का कार्य-कारण संबंध वृक्ष और बीज के समान अनादि है। जगत् की विविधता का कारण उक्त द्रव्य-कर्म ही हैं तथा राग-द्वेषादि मनोविकार रूप भाव-कर्म ही जीवन में विषमता उत्पन्न करते हैं।

### कब से बँधा है कर्म ?

जैनदर्शन के अनुसार जीव और कर्म का अनादि से संबंध है। इन्हीं कर्मों के कारण ही जीव संसार की विभिन्न योनियों में भटकता हुआ हमेषा से दुःखों का भार उठाता रहा है। कर्म-बंध और संसार परिभ्रमण को स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने “पञ्चास्तिकाय” ग्रन्थ में कहा है— “संसार में जितने भी जीव हैं, उनमें राग-द्वेष रूप परिणाम होते हैं। उन परिणामों से कर्म बँधते हैं। कर्मों से चार गतियों में जन्म लेना पड़ता है। जन्म लेने से शरीर मिलता है तथा शरीर में इन्द्रियाँ होती हैं, इनसे विषयों का ग्रहण होता है तथा विषयों के ग्रहण से राग-द्वेष होते हैं। इस प्रकार संसाररूपी चक्र में भ्रमण करते हुए जीव के भावों से कर्मों का बन्ध तथा कर्म-बन्ध से जीव के भाव, सन्तति की अपेक्षा अनादि से चला आ रहा है। यह चक्र अभव्य जीवों की अपेक्षा अनादि अनन्त होते हैं तथा भव्यजीवों की अपेक्षा अनादिसांत (प्रमाणसागर, 1998)<sup>16</sup>।

### कैसे बँधते हैं कर्म ?

जैन-दर्शन के अनुसार लोक में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहाँ कर्म योग्य पद्गल परमाणु नहीं होते।

जीव के मन, वचन, कार्य के निमित्त से अर्थात् जीव की मानसिक, वाचनिक और कायिक प्रवृत्ति के कारण कर्म-योग्य परमाणु चारों ओर से आकृष्ट हो जाते हैं तथा कषायों (मोह, माया, मद, लोभ) के कारण जीवात्मा से चिपक जाते हैं। इस प्रकार कर्म-बन्ध के दो ही कारण माने गये हैं- योग और कषाय। शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति को 'योग' कहते हैं तथा क्रोधादिक-विकार 'कषाय' के अन्तर्गत हैं। जैसे-कषायों के अनेक भेद हो सकते हैं किन्तु स्थूल रूप से दो भेद किये गये हैं- 'राग और द्वेष'। राग-द्वेष युक्त शारीरिक, वाचनिक और मानसिक प्रवृत्ति ही कर्मबन्ध का कारण है। जैसे तो सभी क्रियाएँ कर्मोपार्जन का हेतु बनती हैं, किन्तु जो क्रियाएँ कषाय-युक्त होती हैं, उनसे होने वाला बन्ध बलवान् होता है, जबकि कषायरहित क्रियाओं से होने वाला बन्ध निर्बल और अल्पायु होता है। इसे नष्ट करने में कम शक्ति एवं कम समय लगता है। इस प्रकार योग एवं कषाय कर्म बन्ध के प्रमुख कारण हैं।

### अमूर्त का मूर्त से बन्ध कैसे?

प्रश्न उठता है- कर्म पुद्गल होने में मूर्त-रूपी है और आत्मा अमूर्तिक-अरूपी है। फिर अमूर्तिक के साथ मूर्तिक का संबंध कैसे हो सकता है।

इसका समाधान आचार्यों ने इस प्रकार किया है कि मूर्त-द्रव्य अमूर्त-द्रव्य को प्रभावित नहीं कर सकता, ऐसा एकान्त सिद्धांत नहीं है। जैसे- ज्ञान आत्मा का गुण होने में अमूर्त है, मदिरा और विष आदि पदार्थ रूपी होने से मूर्त होते हैं। जब मनुष्य मदिरापान कर लेता है तो उसका ज्ञानगुण मदिराजन्य प्रभाव से प्रभावित होता प्रत्यक्ष देखा जाता है। जैसे मूर्त मदिरा अमूर्त ज्ञानगुण को

प्रभावित कर देती है। इसी तरह मूर्त कर्म अमूर्त आत्मा को अपने फल से प्रभावित कर देते हैं।

जैनदर्शन अनेकान्तवादी है। अनेकान्त की दृष्टि से आत्मा अमूर्त भी है मूर्त भी। कर्मप्रवाह अनादिकालीन होने से संसारी जीव अनादि काल से कर्म परमाणुओं से आबद्ध चला आ रहा है और वे कर्म- परमाणु स्वर्ण पर लगे मैल की तरह आत्मा को ढँके हुए हैं। इस कारण आत्मा सर्वथा अमूर्त ही नहीं है, कर्म सम्बद्ध होने के कारण वह कथंचित मूर्त भी है। फलतः मूर्त कर्म का अमूर्त आत्मा को प्रभावित कर देना अस्वाभाविक नहीं है (पञ्चस्तिकाय; 141-142)<sup>17</sup>। संसारी आत्मा के प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर अनादिकाल से अनन्तान्त कर्मवर्गणा के पुद्गल कार्मणशरीर के रूप में सदा चिपके रहते हैं। वास्तव में कर्मपुद्गलों के अस्तित्व से ही नये कर्मों का ग्रहण होता है। कर्मों से पूर्ण रूप से मुक्त सिद्धों के कार्मण शरीर नहीं है। अतः उनके कर्मों का बंध भी नहीं होता।

### कर्मों के भेद

जैन कर्म-सिद्धांत की दृष्टि से कर्म की आठ मूल प्रवृत्तियाँ हैं, जो प्राणियों को अनुकूल और प्रतिकूल फल प्रदान करती है। वे हैं -

1. ज्ञानावरणीय कर्म
2. दर्शनावरणीय कर्म
3. मोहनीय कर्म
4. अन्तरायकर्म
5. वेदनीय कर्म
6. नाम कर्म
7. गोत्र कर्म
8. आयुष्य कर्म

### कर्म के आठ मूलप्रकार



### ज्ञानावरणीय कर्म

शुद्ध आत्मा सर्वज्ञत्वगुण युक्त है। परन्तु ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा के सर्वज्ञत्वगुण को आवृत-आच्छादित कर देता है। संक्षेप में, जो आत्मा की ज्ञानशक्ति का विरोध करता है वह ज्ञानावरण कर्म है।

### दर्शनावरणीय कर्म

सर्वज्ञत्वगुण की तरह शुद्ध आत्मा का सर्वदर्शित्वगुण भी है किन्तु दर्शनावरणीय आत्मा के उक्त

गुण को आच्छादित कर देता है। अतः जो आत्मा की दर्शनशक्ति को आच्छादित कर देता है, वह दर्शनावरणीय कर्म है।

### मोहनीय कर्म

जिस कर्म के प्रभाव से आत्मा अपने सम्यक्भाव या स्व-स्वरूप को भूलकर केवल मिथ्या (विपरीत) भाव या परभाव में ही निमग्न रहे, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

जैसे मदिरा पीकर उन्मत्त बना हुआ मनुष्य यथार्थ वस्तुस्वरूप का चिन्तन, कथन और व्यवहार (प्रवृत्ति) नहीं कर सकता, वैसे ही मोहनीय कर्म के वशीभूत जीव सम्यग्दर्शन, सम्यक्चिन्तन एवं सम्यक्आचरण से विमुख होकर मिथ्यादर्शन, मिथ्याचिन्तन एवं मिथ्याआचरण में प्रवृत्त रहता है। इनके व्यक्त और अव्यक्त दो-दो रूप हैं।

#### अन्तरायकर्म

जिस कर्म के कारण आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य(पुरुषार्थ) की शक्ति में विघ्नबाधाएँ या रूकावटें आयें, पदार्थ पास होते हुए भी उनका भोग, उपभोग तथा दान न दिया जा सके, या जिन पदार्थों के मिलने की आशा हो, वे न मिल सकें उसका नाम अन्तरायकर्म है।

ये चारों घात्यकर्म कहलाते हैं। घात्यकर्म वे हैं, जो चेतना-आत्मगुण और आत्मशक्ति के आवरक, विकारक और प्रतिरोधक हैं। इनमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय आते हैं।

चेतना के दो रूप हैं - ज्ञान (जानना या वस्तुस्वरूप का विमर्श करना) और दर्शन(साक्षात् करना या वस्तु का स्वरूप ग्रहण करना)। ज्ञान और दर्शन के आवरक कर्म (कर्मपुद्गल) क्रमशः ज्ञानावरण और दर्शनावरण कहलाते हैं।

आत्मा को विकृत बनाने वाले कर्म की संज्ञा मोहनीय है और आत्मशक्ति का प्रतिरोध करने वाला कर्म अन्तराय है। इन चारों घात्य कर्मों का लक्षण ऊपर वर्णित हैं।

घात्यकर्मों के क्षय के लिए आत्मा को तीव्र प्रयत्न करना होता है। ये चारों कर्म अशुभ ही होते हैं। इनके आँशिक क्षय या उपशम से आत्मा का स्वरूप आँशिक रूप में प्रकट होता है, पूर्णक्षय से पूर्णरूप में। आघात्यकर्म शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। ये चार हैं- वेदनीय, आयुश्य, नाम और गोत्र। ये शुभकर्म इष्टसंयोग के और अशुभकर्म अनिष्ट संयोग के निमित्त बनते हैं। इन दोनों का संगम ही संसार है। शुभकर्म पुण्य के द्योतक हैं, अशुभ पाप के। पुण्य सुख-सुविधा आदि का निमित्त बन सकता है, लेकिन उससे आत्मा को मुक्ति नहीं होती। मुक्ति पुण्य-पाप दोनों के क्षय से होती है। चारों अघात्य (अघाती) कर्मों के लक्षण इस प्रकार हैं -

#### वेदनीय कर्म

जिस कर्म के प्रभाव से आत्मा निजानन्द को भूलकर केवल सांसारिक सुखस्वरूप (पुण्य) या दुःखस्वरूप (पाप) फल को भोगता है, पुण्य-पाप के फलों का अनुभव करता है, उसे वेदनीय कहते हैं, वेदनीय कर्म के दो प्रकार हैं- सातावेदनीय और असातावेदनीय। ये क्रमशः सांसारिक

सुखानुभूति और दुःखानुभूति के निमित्त बनते हैं। इनका क्षय हो जाने पर आत्मा का अव्याबाध गुण प्रकट हो जाता है।

### नामकर्म

जिनके प्रभाव से जीव शुभ या अशुभ शरीर की रचना, प्रभाव आदि प्राप्त करता है, उसे नामकर्म कहते हैं। इसके मुख्य दो प्रकार हैं- शुभ और अशुभ। शुभनाम के उदय से व्यक्ति सुन्दर, आदेय-वचन, यशस्वी और प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला होता है और अशुभनाम के उदय से इसके विपरीत होता है। इन दोनों के क्षय होने पर आत्मा अपने अमूर्तिक (स्व) भाव में स्थित हो जाता है।

#### गोत्रकर्म

जिस कर्म के द्वारा जाति, कुल आदि की उच्चता-निम्नता प्रतीत होती है, उसे गोत्रकर्म कहते हैं। गोत्रकर्म भी दो प्रकार है- उच्चगोत्र, नीचगोत्र। ये क्रमशः उच्चता-नीचता, सम्मान और असम्मान के निमित्त बनते हैं। इनके क्षय से आत्मा अगुरुलघु(पूर्णसम) बन जाता है।

#### आयुष्यकर्म

इस कर्म द्वारा आत्मा चारों गतियों में स्थिति करता है, अमुक काल तक टिका रहता है। इसके भी दो प्रकार हैं- शुभायु और अशुभायु। वैसे चार गतियों में से मनुष्यायु और देवायु, ये दो शुभ हैं, तिर्यञ्चायु और नरकायु ये दोनों अशुभ हैं। ये क्रमशः सुखी जीवन और दुःखी जीवन के निमित्त बनते हैं। इनके क्षय से आत्मा अजर-अमर और अजन्मा बनता है।

#### कर्मबन्ध की प्रक्रिया और कारण

कर्म आत्मा का गुण नहीं है। जो जिसका गुण होता है, वह उसका विघातक नहीं हो सकता। कर्म आत्मा के लिए आवरण, पारतन्त्र्य, दुःख के हेतु और गुणों का विघातक है। आत्मा में अनन्तवीर्य (सामर्थ्य) होता है, जिसे लब्धिवीर्य (शुद्ध आत्मिक सामर्थ्य) कहते हैं, उसका आवरण, विघातक, निरोधक या पारतन्त्र्यप्रापक कर्म तब बनता है, जब आत्मा के साथ शरीर हो। आत्मा और शरीर, इन दोनों के संयोग से जो सामर्थ्य पैदा होता है, उसे करणवीर्य कहते हैं। जिसे हम क्रियात्मक शक्ति कहते हैं, इसके द्वारा जीव में भावनात्मक गूढ़ चैतन्य-प्रेरित क्रियात्मक कम्पन्न होता है। फिर इसके द्वारा विशेष स्थिति का निर्माण होता है। शरीर की आन्तरिक वर्गणा द्वारा निर्मित कम्पन्न में बाहरी पौद्गलिक धाराएँ मिलकर पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा परिवर्तन करती रहती है। क्रियात्मक शक्ति-जनित कम्पन्न द्वारा आत्मा और कर्मपरमाणुओं का संयोग होता है। इस प्रक्रिया को 'आस्त्रव' कहते हैं। आस्त्रव के द्वारा बाहरी कर्म-पौद्गलिक धाराएँ शरीर में आती हैं। फिर आत्मा के साथ सम्पृक्त कर्मयोग्य परमाणु कर्म रूप में परिणत होते हैं, जिसे 'बन्ध' कहते हैं, वह आता है। कर्मपरमाणुओं के आत्मा से वियोग की 'निर्जरा' कहते हैं। निर्जरा के द्वारा कर्मपुद्गल-धाराएँ फिर शरीर के बाहर चली जाती हैं। इस प्रकार कर्मपुद्गल-परमाणुओं के शरीर में आने और पुनः चले जाने के बीच की दशा को बन्ध कहा जाता है। शुभ और अशुभ परिणाम आत्मा की क्रियाशक्ति (करणवीर्य) के प्रवाह हैं, जो निरन्तर रहते हैं। इन दोनों में कोई न

कोई एक परिणाम प्रतिसमय अवश्य ही रहता है। शुभपरिणति के समय शुभ और अशुभ परिणति के समय अशुभ कर्म परमाणुओं का आकर्षण होता है।

### बन्ध के नियम

अकर्म के कर्म का बन्ध नहीं होता। पूर्व-कर्म से बद्ध जीव ही नये कर्मों का बन्ध करता है। मोहकर्म के उदय से जीव रागद्वेष से परिणत होता है, तभी अशुभ कर्मों का बन्ध करता है। मोहरहित प्रवृत्ति करते समय जीव शरीर नामकर्म के उदय से शुभकर्म का बन्ध करता है। पहले बँधा हुआ ही बँधता है, अबद्ध नहीं; या नये सिरे में नहीं। यदि यह नियम न हो तो मुक्त (अबद्ध) जीव भी कर्मबन्ध से बँध जायेंगे।

शोध उद्देश्य—

इस शोध का उद्देश्य कर्म की प्रकृति जानते हुए इससे व्यक्ति के मन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। कर्म की प्रकृति किस प्रकार से मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है, इसका इस शोध में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाना है।

### निष्कर्ष

जैनदर्शन के अनुसार व्यक्ति कर्मों के बिना कोई अस्तित्व नहीं रखता। इसके अनुसार कर्म ही वह माध्यम है, जो आत्मा की उर्जा को ग्रहण करते हैं तथा अपने स्वरूप (अच्छे या बुरे) के अनुसार उर्जा में बदलकर विभिन्न इन्द्रियों में प्रवाहित करता है। अच्छे कर्म आत्मिक उर्जा का स्वाभाविक प्रवाह बनाये रख व्यक्ति को गतिशील रखता है, इन कर्मों के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व संकलित अथवा अखण्डित बना रहता है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कछारा, एन० एल० (2009)— जैन डूएलिज्म, [www.hereNow4u.net](http://www.hereNow4u.net)
2. कछारा, एन० एल० (2009) — जैन डाक्टरिन ऑफ कर्मा, धर्म दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्र नगर, उदयपुर, राजस्थान,
3. बारकर, एरिक (2014) — <http://time.com/130711/science-of-karma-3-steps-to-making-it-work-for-you/>
4. त्यागी, सोनिका (2017) — लाइफ ट्रांजिशन कोच, साइकोसिक, <https://www.quora.com/Is-karma-scientifically-proven>
5. शर्मा, देव (2017)— <https://www.quora.com/What-is-karma>

### पाद टिप्पणी

1. तुलसीदास (2001)—अयोध्याकाण्ड, रामचरित मानस, 210/4, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. राधाकृष्णन, सर्वेपल्लि (2004) — कर्मयोग या कार्य की पद्यति, अध्याय-3/5, गीता, हिन्दू पाकेट बुक्स प्रा.लि., जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 161

3. राधाकृष्णन, सर्वेपल्लि (2004)— कर्मयोग या कार्य की पद्यति, अध्याय-3/5, गीता, हिन्दू पाकेट बुक्स प्रा.लि., जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 161
4. अकलंकदेव, भट्ट (2001)— अध्याय छठवाँ, 6/1, तत्त्वार्थवार्तिक, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशन एरिया, लोदी रोड़, नई दिल्ली, पृष्ठ- 705
5. तिलक (2006)— तीसरा प्रकरण, कर्मयोगशास्त्र, न्यू साधना पाकेट बुक्स, 70, प्लाजा, रोशनआरा रोड़, दिल्ली, पृष्ठ- 49
6. प्रमाणसागर (1998) — जैनदर्शन में कर्म का स्वरूप, जैन धर्म और दर्शन, श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला, जबलपुर (म.प्र.), पृष्ठ- 136
7. प्रमाणसागर (1998) — जैनदर्शन में कर्म का स्वरूप, जैन धर्म और दर्शन, श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला, जबलपुर (म.प्र.), पृष्ठ- 136
8. प्रमाणसागर (1998) — जैनदर्शन में कर्म का स्वरूप, जैन धर्म और दर्शन, श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला, जबलपुर (म.प्र.), पृष्ठ- 136
9. जाटव, डी.आर. (2000) — कर्मसिद्धांत, धर्मों के विभिन्न पक्ष, मलिक एण्ड कम्पनी, 337, चौड़ा रास्ता, जयपुर, पृष्ठ-195
10. जाटव, डी.आर. (2000) — कर्मसिद्धांत, धर्मों के विभिन्न पक्ष, मलिक एण्ड कम्पनी, 337, चौड़ा रास्ता, जयपुर, पृष्ठ-195
11. जाटव, डी.आर. (2000) — कर्मसिद्धांत, धर्मों के विभिन्न पक्ष, मलिक एण्ड कम्पनी, 337, चौड़ा रास्ता, जयपुर, पृष्ठ-195
12. जाटव, डी.आर. (2000) — कर्मसिद्धांत, धर्मों के विभिन्न पक्ष, मलिक एण्ड कम्पनी, 337, चौड़ा रास्ता, जयपुर, पृष्ठ-195
13. जाटव, डी.आर. (2000) — कर्मसिद्धांत, धर्मों के विभिन्न पक्ष, मलिक एण्ड कम्पनी, 337, चौड़ा रास्ता, जयपुर, पृष्ठ-195
14. ओशो (1989) — जीवन एक वर्तुल है, पाँचवा प्रवचन, बिन बाती बिन तेल, रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., 50, कोरेगाँव पार्क, पूना, पृष्ठ- 85
15. ओशो (1989) — जीवन एक वर्तुल है, पाँचवा प्रवचन, बिन बाती बिन तेल, रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., 50, कोरेगाँव पार्क, पूना, पृष्ठ- 85
16. प्रमाणसागर (1998)— जैनदर्शन में कर्म का स्वरूप, जैन धर्म और दर्शन, श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला, जबलपुर (म.प्र.), पृष्ठ- 136
17. प्रमाणसागर (1998)— जैनदर्शन में कर्म का स्वरूप, जैन धर्म और दर्शन, श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला, जबलपुर, (म.प्र.), पृष्ठ- 138
18. प्रमाणसागर (1998) — जैनदर्शन में कर्म का स्वरूप, जैन धर्म और दर्शन, श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला, जबलपुर, (म.प्र.), पृष्ठ- 138